अवलोकितेश्वर ग्रन्थमाला- ५

करुणा तथा व्यक्ति

परम पावन चौदहवें दलाई लामा
तेनजिन ग्यात्सो

H
294.763
D 15 K

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५४१ ख्रीष्टाब्द १९९७

H
294.763
D15 K

अवलोकितेश्वर ग्रन्थमाला- ५

करुणा तथा व्यक्ति

[विजडम पब्लिकेशंस्, बोस्टन द्वारा १९९१ में प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी-रूपान्तर]

परम पावन दलाई लामा
तेनजिन ग्यात्सो

हिन्दी रूपान्तरकार
परमानन्द शर्मा

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५४१ ख्रीष्टाब्द १९९७

अवलोकितेश्वर ग्रन्थमाला- ५

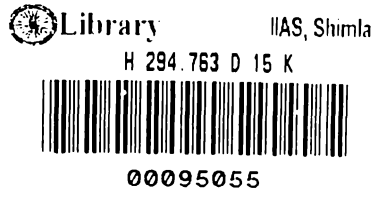
Library IIAS, Shimla
H 294.763 D 15 K
00095055

प्रधान सम्पादक : प्रो० समदोङ् रिनपोछे
सम्पादक : प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी

प्रथम संस्करण : १५०० प्रतियाँ, १९९७

मूल्य : अजिल्द : १५.००

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७, भारत, १९९७
प्रकाशन सम्बन्धी सभी अधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

मुद्रक : सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, पाण्डेयपुर, वाराणसी ।

प्रकाशकीय

करुणा या प्रेम न केवल मानव-जाति का, अपितु प्राणिमात्र का सहज एवं स्वाभाविक गुण है ! माता अपने पुत्र के प्रति सहज ही करुणावती होती है और बच्चे भी स्वत: माता के स्नेह के अभिलाषी होते हैं । जगत् का अब तक का सर्वविध विकास प्रेम, करुणा, सहयोग आदि गुणों से ही हुआ है, न कि संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष आदि से । 'करुणा तथा व्यक्ति' नामक प्रस्तुत पुस्तिका में परम पावन दलाई लामा जी ने कहा है कि क्रोध, ईर्ष्या, घृणा तथा आत्मकेन्द्रित स्वार्थ-भावना ही सारी विपत्तियों का मूल है । करुणा, प्रेम, क्षान्ति आदि गुण इन दुर्गुणों का निवारण कर व्यक्ति को व्यापक एवं उदार बनाते हैं । उनका कहना है कि शत्रु से भी प्रेम करना चाहिए, क्योंकि उनके अपकार और उनके द्वारा दिये हुए दु:खों को सहन कर हम अपने में क्षान्ति (सहिष्णुता) आदि का विकास कर सकते हैं । अत: हमारे व्यक्तित्व के विकास में शत्रु का भी योगदान होता है । अत: उनके प्रति भी हमें मैत्रीचित्त होना चाहिए ।

परम पावन जी का कहना है कि करुणा का सम्बन्ध किसी धर्मविशेष या सम्प्रदायविशेष के साथ नहीं है, अपितु यह प्राणिमात्र की सहज प्रकृति है । व्यक्ति चाहे धार्मिक या अधार्मिक, आस्तिक हो या नास्तिक अपने अन्दर विद्यमान करुणा-बीज को विकसित कर सकता है । ऐसा व्यक्ति निश्चित रूप से मानव-मानव में भेद किये बिना व्यापक जागतिक दु:ख के विनाश के लिए अपने-आपको लोकसेवा में समर्पित कर देता है । इस तरह व्यक्तित्व के विकास में और उसके माध्यम से नए समाज के निर्माण में करुणा का अनुपम योगदान है ।

परम पावन दलाई लामा जी के उपर्युक्त प्रकार के विचार प्रस्तुत पुस्तिका में लिपिबद्ध हैं । संस्थान इसे प्रकाशित कर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है । आदरणीय श्री परमानन्द शर्मा ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है तथा संस्थान के शोध-आचार्य प्रो० रामशंकर त्रिपाठी ने इसका सम्पादन किया है । हम इन दोनों महानुभवों को साधुवाद देते हैं । प्रकाशन-अनुभाग के सभी सहयोगी सदस्य भी हमारे साधुवाद के पात्र हैं ।

सारनाथ
१३ जून १९९७

स० रिनपोछे
निदेशक

विषयानुक्रम

प्रकाशकीय	iii
विषयानुक्रम	v
जीवन का उद्देश्य	१
सुख के उपाय	१
प्रेम-भाव की आवश्यकता	२
करुणा का विकास	६
आरम्भ कैसे करें	८
मित्र तथा शत्रु	१०
करुणा तथा संसार	१२

करुणा तथा व्यक्ति

जीवन का उद्देश्य

हम इसके सम्बन्ध में जानबूझ कर विचार करें अथवा न करें तो भी हमारे समूचे अनुभव के अन्तर्गत एक महान् प्रश्न निहित रहता है: 'जीवन का उद्देश्य क्या है ?' मैंने इस प्रश्न पर विचार किया है और मैं अपने विचारों को आपके साथ बांटना चाहूंगा, इस आशा के साथ कि वे इन्हें पढ़ने वालों के लिए सीधे एवं व्यवहारिक रूप में लाभदायक सिद्ध हों ।

मेरा विश्वास है कि जीवन का उद्देश्य है सुख-प्राप्ति । अपने जन्म के क्षण से ही प्रत्येक मानव दु:ख न चाहते हुए सुख का इच्छुक होता है । उसकी इस इच्छा पर न सामाजिक प्रवृत्तियों, न शिक्षा तथा न ही उसकी मान्यताओं का कोई प्रभाव पड़ता है । अपने हृदय के अन्तस्तल से हम मात्र सुख एवं सन्तोष की कामना करते हैं । मैं नहीं जानता कि अगणित तारा-मंडलों तथा ग्रह-नक्षत्रों से युक्त इस लोक का कोई गुह्य अर्थ भी है या नहीं, परन्तु कम से कम, इतना तो स्पष्ट है ही कि इस धरती पर रहने वाले हम इन्सानों के लिए अपने जीवन को सुखी बनाने का ध्येय अवश्य है । अत: यह ढूंढना आवश्यक हो जाता है कि अपार सुख कैसे सम्भव हो ।

सुख के उपाय

प्रत्येक सुख तथा दु:ख को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—मानसिक तथा शारीरिक । इन दोनों में से मन जो है, वही सर्वाधिक प्रभावी है । जब तक हम अत्यधिक रोग-ग्रस्त न हों अथवा जीवन के मूलभूत साधनों से बिलकुल वंचित न हों, तब तक शारीरिक अवस्था की हमारे जीवन में भूमिका गौण रहती है । यदि शरीर स्वस्थ है तो हमें उसकी कोई परवाह नहीं होती । परन्तु हमारे मन पर प्रत्येक घटना की छाप पड़ती है, चाहे वह कितनी भी छोटी हो । अत: हमारा अथक प्रयास होना चाहिए मानसिक शान्ति प्राप्त करने हेतु । मेरे अपने सीमित अनुभव के अनुसार सर्वाधिक आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है प्रेम तथा करुणा के विकास द्वारा ।

हम जितने ही अधिक दूसरों के सुख की चिन्ता करेंगे, उतना ही अधिक हमारा अपना कल्याण सिद्ध होगा । दूसरों के प्रति स्नेह-सौहार्द की स्निग्ध भावना को विकसित करने के फलस्वरूप चित्त स्वयमेव शान्ति-सम्पन्न बन जाता है । इससे समस्त आन्तरिक भय तथा असुरक्षा की भावना आदि दूर हो जाते हैं तथा समस्त संभाव्य बाधाओं का मुकाबला करने में हम सक्षम हो जाते हैं । जीवन में सफलता का यही परम स्रोत है ।

सांसारिक जीवन में समस्याएँ तो अवश्य आती ही रहेंगी । ऐसे समय में यदि हम निराश एंव निरुत्साहित हो जाएँगे तो उनका मुकाबला करने की हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी । विपरीत इसके, यदि हम यह स्मरण रखें कि वे केवल हमारे जीवन में ही नहीं, बल्कि सबके जीवन में आती हैं तो इस व्यावहारिक दृष्टिकोण द्वारा हमारे निश्चय को तथा कठिनाईयों पर काबू पाने की हमारी क्षमता को बल मिलेगा । यही नहीं, बल्कि ऐसा दृष्टिकोण रहते हमें हर नई बाधा मानसिक विकास हेतु नया सुअवसर देती हुई प्रतीत होगी ।

इस प्रकार हम अधिक करुणाशील बनने का धीरे-धीरे प्रयास कर सकते हैं । अर्थात् हम दूसरों के प्रति सम्यक् संवेदनशील बन कर उनके दु:खों को दूर करने की इच्छा-शक्ति को विकसित कर सकते हैं । फलत: हमारी आन्तरिक शक्ति तथा सौम्यता बढ़ेगी ।

प्रेम-भाव की आवश्यकता

प्रेम तथा करुणा के अत्यन्त सुखदायी होने का कारण अन्ततोगत्वा यही है कि वे स्वभावत: हमें अत्यधिक मनोनुकूल, रुचिकर एवं तृप्तिकर लगते हैं । प्रेम की आवश्यकता तो मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकता है । इसका कारण है परस्पराश्रय की अपरिहार्य वास्तविकता, जो हम सब में विद्यमान है । कोई भी व्यक्ति कितना ही योग्य अथवा कुशल क्यों न हो, अकेला रहकर वह जी नहीं सकता । अपने जीवन के अत्यन्त समृद्धिकाल में कोई अपने-आप को कितना भी स्वतन्त्र एवं सशक्त महसूस करता हो, परन्तु बीमारी के समय अथवा शैशवावस्था में या वृद्धावस्था में उसे दूसरों पर निर्भर रहना ही पड़ता है ।

परस्पराश्रयता या परनिर्भरता प्रकृति का एक मूल सिद्धान्त है । न केवल उच्च श्रेणी के प्राणी, बल्कि अनेक लघु कीट-पतंग आदि भी सामाजिक जीव

होते हैं, जो बिना किसी धर्म, विधान अथवा शिक्षा के एक दूसरे के साथ सम्बन्धों की स्वाभाविक पहचान के आधार पर पारस्परिक सहयोग द्वारा जीवित रहते हैं । अत्यन्त सूक्ष्म भौतिक घटना-चक्र भी पारस्परिक निर्भरता पर आधारित होते हैं । जिस धरती पर हम निवास करते हैं, उससे लेकर सागरों, बादलों, वनों, वनस्पतियों, फल-फूलों आदि तक जो हमारे इर्द-गिर्द हैं, समस्त चीजों के उद्‌भव का आधार ऊर्जा के सूक्ष्म प्रतिरूपों की अन्योन्याश्रयता ही तो है । उनकी यथोचित प्रक्रिया के अभाव में उनका विघटन एवं ह्रास हो जाता है ।

क्योंकि हमारा मानव-जीवन इतना परस्पर-आश्रित है, अत: प्रेम की भावना हमारे जीवन का मूल आधार हो जाती है । इसीलिए हम में यथेष्ट उत्तरदायित्व की भावना तथा दूसरों के कल्याण की हार्दिक चिन्ता का होना बहुत जरूरी है ।

आइए सोचें कि हम इन्सान वास्तव में हैं क्या ? हम यन्त्र-निर्मित वस्तुओं की तरह तो हैं नहीं । यदि हम मात्र एक यांत्रिक अस्तित्व होते तो मशीनें ही हमारे सब दु:ख दूर करने तथा हमारी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होतीं । परन्तु क्योंकि हम मात्र भौतिक नहीं, इसलिए बाह्य विकास पर ही अपनी समस्त सुखाभिलाषाओं को केन्द्रित करना हमारी बड़ी भूल है । वास्तव में हमें अपने उद्‌भव एवं प्रकृति पर विचार करके अपनी प्राथमिकताओं को निश्चित करना चाहिए ।

इस विश्व की रचना तथा उसके विकास-क्रम जैसे जटिल प्रश्न को छोड़कर हम कम से कम एक प्रश्न पर तो सहमति रख सकते हैं कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने माता-पिता की सन्तान है । सामान्यत: मात्र यौन-क्रिया की इच्छा-पूर्ति के फल-स्वरूप हमारा गर्भाधान नहीं हुआ, बल्कि हुआ है हमारी माता के सन्तान-प्राप्ति की इच्छा-शक्ति एवं निर्णय के फल-स्वरूप । इस प्रकार के निर्णयों का आधार होती है दायित्व या कल्याण-भावना अर्थात् माता-पिता की अपने बच्चे के वयस्क हो जाने तक उसके पालन-पोषण के प्रति करुणा-युक्त प्रतिबद्धता । इस प्रकार गर्भ के क्षण से ही हमारी माता के प्रेम का हमारी संरचना से सम्बन्ध हो जाता है । इसके अतिरिक्त, हमारे बड़े होने के अत्यन्त आरम्भिक चरणों से ही हम पूर्णतया अपनी माता की कृपा पर निर्भर रहते हैं ।

कई वैज्ञानिकों का मत है कि गर्भवती महिला की मानसिक दशा का, चाहे वह शान्त हो अथवा अशान्त, गर्भस्थ शिशु की शारीरिक रचना पर सीधा प्रभाव पड़ता है ।

बच्चे के जन्म के समय प्रेम-भाव भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है । क्योंकि (जन्म के पश्चात्) पहला काम जो हम करते हैं वह है मां का स्तन-पान । अत: हम मां के सान्निध्य में सुरक्षा का अनुभव करते हैं तथा हमें सुचारु रूप से दुग्ध-पान कराने के लिए उसका भी हमारे प्रति प्रेम-भाव होना आवश्यक है । यदि वह क्रुद्ध होगी अथवा रुष्ट होगी तो स्तन से दुग्ध-स्राव उन्मुक्त भाव से न हो सकेगा ।

जन्म के समय से कम से कम तीन चार वर्ष की आयु तक बच्चे के मस्तिष्क के विकास की अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । इस दौरान स्नेहपूर्ण शारीरिक स्पर्श भी बच्चे के सामान्य विकास हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है । यदि उसे उठाकर अङ्क में न लें, उसे छाती से न लगाएँ, उसके साथ दुलार-पुचकार न करें तो उसके विकास को क्षति पहुँचेगी तथा उसका मस्तिष्क भी ठीक से पुष्ट न हो पाएगा ।

प्यार ही बच्चे के लिए सबसे बड़ा पौष्टिक आहार है, क्योंकि वह दूसरों की देख-रेख के विना जी नहीं सकता । बचपन का सुख, बच्चे के कई प्रकार के भयों को शान्त करना तथा उसमें स्वस्थ आत्म-विश्वास का विकास-ये सब प्रेम भाव पर ही निर्भर करते हैं । आजकल अनेक बच्चे प्यार-दुलार-हीन परिवारों में पलते हैं । यदि उन्हें यथोचित प्यार न मिले तो भावी जीवन में वे अपने माता-पिता से शायद ही प्यार करें तथा सम्भवत: दूसरे लोगों के साथ भी प्यार न कर पाएँ यह बड़ी शोचनीय बात है ।

जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और पाठशाला में प्रवेश करते हैं तो सहारा प्राप्त करने की उनकी आवश्यकता की पूर्ति उनके अध्यापकों द्वारा पूरी की जानी चाहिए । यदि कोई अध्यापक मात्र शैक्षिक ज्ञान न देकर अपने विद्यार्थियों को जीवन-सग्राम के लिए प्रशिक्षित करने का दायित्व भी अपने ऊपर लेता है तो उसके शिष्य उसके प्रति विश्वास तथा समादरभाव रखेंगे तथा जो उसने उन्हें पढ़ाया है, उसकी अमिट छाप उनके मन पर सर्वदा रहेगी । विपरीत इसके, ऐसे अध्यापकों द्वारा पढ़ाये गये विषय, जिनकी अपने शिष्यों के सर्वांगीण कल्याण में

कोई रुचि नहीं, मात्र सामयिक से लगेंगे तथा शिष्य उन्हें देर तक याद भी न रख पाएँगे ।

एक अन्य उदाहरण लें; यदि कोई व्यक्ति रोग-ग्रस्त है तथा अस्पताल में उसका उपचार एक ऐसे चिकित्सक द्वारा हो रहा है, जो स्नेहिल मानवीय भावना को व्यक्त करता है तो रोगी अधिक राहत महसूस करता है, क्योंकि चिकित्सक की सुचारु ढंग से अपने रोगी की देखभाल करने की इच्छा ही स्वास्थ्य-दायिनी बन जाती है, चाहे उसका तकनीकी कौशल कैसा भी हो । विपरीत इसके, यदि चिकित्सक में मानवीय भावना की कमी हो तथा उसकी मुखमुद्रा मैत्रीभाव से रहित या जल्द-बाजी और लापरवाही के कारण उपेक्षा-युक्त हो तो रोगी चिन्तित हो उठेगा-चाहे वह चिकित्सक कितना ही योग्यता-प्राप्त हो तथा उसने रोग की पहचान भी बिलकुल ठीक की हो और ठीक-ठीक औषधि भी बतला दी हो । निश्चित ही, रोगियों के पूर्णतया रोग-मुक्त होने की प्रकिया में चिकित्सक की स्निग्ध भावनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

अपने दैनिक जीवन में भी जब हम साधारण ढंग से बात-चीत करते हैं तो जो व्यक्ति मानवीय स्नेहिल भावना से प्रेरित होकर बोलता है तो उसे सुनना हम पसंद करते हैं और उसी प्रकार की भावना से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं तथा समूचा वार्तालाप रोचक बन जाता है, बेशक विषय कितना ही साधारण क्यों न हो । विपरीत इसके, यदि कोई व्यक्ति रूखा सा तथा कर्कश अन्दाज में बोलता है तो हम अटपटा सा महसूस करते हैं तथा इच्छा रहती है कि वार्ता शीघ्र समाप्त हो जाए । छोटी से छोटी घटना से लेकर बड़ी से बड़ी घटना तक दूसरों का स्नेह तथा समादरभाव हमारे सुख हेतु परम आवश्यक हैं ।

कुछ दिन हुए मुझे अमरीकी वैज्ञानिकों की एक टोली से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ; उन्होंने मुझे बताया कि उनके देश में मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है अर्थात् जनसंख्या की बारह प्रतिशत । हमारे पारस्परिक विचार-विमर्श के मध्य यह स्पष्ट हो गया कि इस प्रकार की नैराश्य भावना का मुख्य कारण भौतिक सुख-सुविधाओं का अभाव न हो कर अन्यों के प्रति प्रेम-भाव की अनुपस्थिति थी ।

जैसा कि मैं अब तक उल्लेख कर चुका हूँ मेरे लिए एक बात तो स्पष्ट है: हमारे जन्म लेने के दिन से ही मानवीय स्नेह की आवश्यकता हमारे लहू में

विद्यमान होती है, चाहे हम उससे स्पष्टतया परिचित रहें, चाहे न रहें । यदि वह स्नेह किसी पशु की ओर से अथवा ऐसे व्यक्ति से भी, जिसे हम शत्रु समझते हों, मिले तो भी बच्चे और बड़े सब स्वाभाविक तौर पर उसकी ओर आकृष्ट होंगे ।

मेरा विश्वास है कि कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसे प्रेम की आवश्यकता न हो । इससे प्रमाणित होता है कि मानवों की परिभाषा मात्र भौतिकता नहीं हो सकती । कोई भी भौतिक वस्तु, चाहे वह कितनी भी बहुमूल्य अथवा सुन्दर क्यों न हो, हमें प्रेम की अनुभूति नहीं दे सकती, क्योंकि हमारी मूल अस्मिता तथा यथेष्ट चारित्र्य हमारे चित्त की व्यक्तिनिष्ठ प्रकृति में विद्यमान होते हैं ।

करुणा का विकास

मेरे कुछ मित्रों का कहना है कि यद्यपि प्रेम तथा करुणा अच्छे गुण हैं, आकर्षक हैं तो भी वे वास्तव में प्रासंगिक नहीं । उनके अनुसार यह संसार ऐसा है ही नहीं कि उस पर इन चीजों का कोई प्रभाव पड़े । उनकी धारणा है कि क्रोध तथा घृणा मानव प्रकृति के ऐसे अंग बन चुके हैं कि मानवता पर उनका वर्चस्व स्थायी है । किन्तु मैं उनकी इस धारणा से सहमत नही हूँ ।

लगभग एक लाख वर्ष के समय से हम इन्सान अपनी वर्तमान स्थिति में हैं । मेरा विश्वास है कि इस लम्बी अवधि में यदि मानव मूलत: क्रोध तथा घृणा के प्रभावाधीन ही होता तो अब तक सामूहिक रूप से उनकी संख्या कम हो गई होती; परन्तु समस्त युद्धों के बावजूद आज मानवों की संख्या पहले से कहीं अधिक है। मेरे समक्ष यह इस तथ्य का द्योतक है कि संसार में प्रेम तथा करुणा का आधिक्य है । यही कारण है कि अप्रिय घटनाएँ तो समाचार बन जाती हैं, किन्तु करुणामय एवं प्रियतापूर्ण गतिविधियां दैनिक जीवन का अभिन्न अङ्ग होने के कारण प्रचारित नहीं होतीं ।

अभी तक मैं करुणा से सम्बन्धित मुख्यतया मानसिक लाभों पर ही विचार कर रहा था, परन्तु वास्तव में इसका अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य हेतु भी बड़ा योगदान होता है । मेरे व्यक्तिगत अनुभव के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य तथा शारीरिक स्वास्थ्य में सीधा सम्बन्ध है । निस्सन्देह, क्रोध और घृणा हमें अधिक रोगोन्मुख बनाते हैं । विपरीत इसके, यदि चित्त शान्त है तथा कुशल विचारों से युक्त है तो शरीर साधारणतया रोगग्रस्त होगा ही नहीं ।

हाँ, यह भी सत्य है कि हम सब की स्वाभाविक प्रकृति है आत्मकेन्द्रित रहना, जो कि दूसरों के प्रति हमारे प्रेम में अवरोधक बनती है । अत: क्योंकि हम ऐसे सच्चे सुख के इच्छुक रहते हैं, जो मात्र शान्त चित्त द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है और क्योंकि वह शान्ति केवल करुणा-चित्त द्वारा ही प्राप्य हो सकती है तो किस प्रकार इस करुणा का विकास सम्भव हो ? स्पष्ट है कि हमारे लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम विचार मात्र रखें कि अहो, करुणा कितनी अच्छी चीज है । हमें इसे विकसित करने हेतु एक-जुट प्रयास भी करना चाहिए । अपने विचार को व्यवहार में परिणत करने के लिए हमें दैनिक जीवन की सारी चर्या और सारी शक्ति इस हेतु उपयोग में लानी चाहिए ।

सबसे पहले हमें स्पष्टतया यह समझ लेना चाहिए कि करुणा का अर्थ क्या है । करुणा की कई भावनाओं में प्राय: अभिलाषा तथा आसक्ति का संमिश्रण होता है । उदाहरणार्थ, अपने बच्चे के प्रति माता-पिता की करुणा-भावना का गहरा सम्बन्ध प्राय: उनकी अपनी अनेक भावात्मक अपेक्षाओं के साथ होता है । अत: उनका वह प्रेम पूर्ण-रूपेण करुणामय नहीं कहा जा सकता । इसी तरह विवाह के समय पति-पत्नी के मध्य प्रेम, विशेष कर शुरु-शुरु में, जब वे एक दूसरे के वास्तविक शील एंव चरित्र से अभी भली-भाँति परिचित नहीं होते, अनुराग एवं आसक्ति पर अधिक निर्भर होता है, न कि सच्चे स्नेह पर । हमारी आसक्ति इतनी बलवती हो सकती है कि जिस व्यक्ति के प्रति हम आकृष्ट होते हैं, वह एक नकारात्मक व्यक्ति हो, फिर भी हमें बहुत भला प्रतीत होता हो । इसके अतिरिक्त, थोड़ी सी भावना को बड़ी बनाकर दिखाने की हमारी प्रवृत्ति भी तो होती है । इसीलिए जब एक के दृष्टिकोण में बदलाव आता है तो प्राय: दूसरा साथी भी निराश होकर अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन कर लेता है । यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि वह प्रेम स्वार्थ पर अधिक निर्भर करता था, अपने साथी के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता पर कम। (प्रमाणित होता है कि) सच्ची करुणा कोई भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि वह तो विवेक पर आधारित एक प्रबल स्वाभाविक प्रतिबद्धता है । अत: सही अर्थों में करुणाशील दृष्टिकोण दूसरों के नकारात्मक व्यवहार के समक्ष भी बदलता नहीं, अपितु यथावत् बना रहता है ।

हाँ, उपर्युक्त संकेतित करुणा को विकसित करना कोई आसान बात नहीं, विशेषत: प्राथमिक स्तर पर । आएं, हम निम्नलिखित बातों पर विचार करें :

लोग चाहे सुन्दर हों, मैत्री-भाव से युक्त हों अथवा कुरूप व विघटन-वादी हों, परन्तु अन्तत: वे हैं तो हमारी तरह इन्सान ही । हमारी तरह ही वे सुख की इच्छा रखते हैं और दु:ख नहीं चाहते । इसके अतिरिक्त, दु:ख के नाश तथा सुख की प्राप्ति का उनका अधिकार भी समान है । जब आप यह मान गए कि सुख के तथा उसकी प्राप्ति के अधिकार की दृष्टि से सभी इन्सान बराबर हैं तो स्वत: आपकी उनके प्रति सहानुभूति हो जाना सहज है । अपनी चित्त-वृत्ति को इस प्रकार की सार्वभौम पर-कल्याणमयी भावना से अभ्यस्त कर लेने के फल-स्वरूप आप के भीतर दूसरों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी ही अर्थात् उनकी समस्याओं को सुलझाने की और उनकी सक्रिय सहायता करने की आकांक्षा । यह आकांक्षा कुछ इने गिने लोगों के लिए न होकर सबके लिए होगी । जब तक वे सुख-दु:ख का अनुभव करने वाले वैसे इन्सान रहेंगे, जैसे कि आप, तब तक कोई प्रामाणिक कारण नहीं बनता कि आप उनमें भेदभाव करें अथवा उनके नकारात्मक व्यवहार के कारण अपनी सहानुभूति में परिवर्तन लाएँ ।

मैं इस बात पर बल दूंगा कि उपर्युक्त ढंग की करुणा को विकसित कर पाना हमारे सामर्थ्य में है यदि हम यथोचित समय लगाएँ तथा धैर्य्य से काम लें । हां, हमारी उस करुणा के रास्ते में बाधक बनता है हमारा आत्म-केन्द्रित मानस तथा स्वतन्त्र अस्तित्व से युक्त हमारे निरपेक्ष आत्मभाव की अवधारणा । सच्ची करुणा इस प्रकार के आत्मभाव के निवारण द्वारा ही उत्पन्न की जा सकती है । इसका यह अर्थ नहीं कि हम इसका अभ्यास अभी शुरु नहीं कर सकते अथवा इस दिशा में प्रगति नहीं कर सकते ।

आरम्भ कैसे करें

हमें आरम्भ करना चाहिए करुणा-पथ की बाधाओं को दूर करके अर्थात् क्रोध और घृणा को हटाकर । हम सब जानते हैं कि ये दोनों (क्रोध और घृणा की) भावनाएं बड़ी शक्तिशाली होती हैं तथा वे हमारे समूचे चित्त पर नियन्त्रण कर लेती हैं; फिर भी इन पर काबू अवश्य पाया जा सकता है । यदि

हम उन पर नियन्त्रण नहीं कर पाएंगे तो अनायास ही ये अकुशल भावनाएं हमें तंग करती रहेंगी तथा एक स्नेहिल चित्त की हमारी खोज में बाधक होंगी । अत: श्रीगणेश करने हेतु यह अन्वेषण करना उचित होगा कि क्रोध का कोई मूल्य है भी अथवा नहीं । कभी-कभी जब हम किसी कठिन परिस्थिति में निराश हो जाते हैं तो क्रोध तनिक सहायक सा प्रतीत होता है, क्योंकि वह हमें कुछ अधिक शक्ति, अधिक विश्वास तथा अधिक निश्चयात्मकता सी प्रदान करता है ।

उपर्युक्त अवस्था में हमें अपनी मन:स्थिति का भलीभाँति विश्लेषण अवश्य करना चाहिए । यह तो सत्य है कि क्रोध से तात्कालिक अधिक शक्ति आती है, परन्तु खोज करने पर विदित होगा कि यह अन्धा बल होता है तथा हमें यह निश्चय नहीं हो पाता कि उसका परिणाम कुशल होगा अथवा अकुशल होगा । ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि क्रोध विवेक एवं बुद्धि को पूरी तरह ग्रस लेता है तथा निर्णायक शक्ति लुप्त हो जाती है । अत: क्रोध-जनित शक्ति सदैव अविश्वसनीय होती है । यह विघटन-कारी एवं दुर्भाग्यपूर्ण व्यवहार का हेतु बनती है । इसके अतिरिक्त, यदि क्रोध अत्यधिक बढ़ जाए तो व्यक्ति पागल हो उठता है और अपने कृत्य से स्वयं को तथा दूसरों को हानि पहुंचाता है ।

एक ऐसे सशक्त, किन्तु नियन्त्रित सामर्थ्य का, जो कठिनाइयों से जूझने में सहायक हो सके, निर्माण सम्भव है । यह नियन्त्रित सामर्थ्य न केवल करुणात्मक दृष्टिकोण द्वारा, अपितु सहिष्णुता, धैर्य्य तथा विवेक द्वारा भी प्राप्त होता है । ये गुण क्रोध के सबसे सशक्त प्रतिरोधक हैं। दुर्भाग्यवश कई लोग इन गुणों को दुर्बलता के द्योतक समझते हैं । मेरा मत उनसे सर्वथा विपरीत है। ये तो आन्तरिक शक्ति के सही द्योतक हैं । करुणा स्वभावत: सरल, शान्त एवं मृदु होती है, परन्तु वह बहुत बलवती भी होती है । वही लोग क्रोध के शिकार होते हैं, जो जल्दी ही धैर्य्य खो बैठते हैं अथवा असुरक्षित एवं अस्थिर होते हैं । अत: मेरी दृष्टि में क्रोध का आना दुर्बलता की सीधी निशानी है ।

जब पहले-पहल कोई समस्या खड़ी होती है तो विनम्र रहने का प्रयास करें तथा अविषम दृष्टिकोण रखते हुए सोचें कि क्या इसका परिणाम ठीक ही रहेगा । हो सकता है दूसरे लोग आपका फायदा उठाने की कोशिश करें । यदि आपकी अनासक्ति से अन्याय और जोर-जबरदस्ती को प्रोत्साहन मिल रहा हो तो आप कड़ा रुख भी अपनाएं, परन्तु करुणाशील रहते हुए । यदि आपको अपना

दृष्टिकोण स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़े अथवा कठोर पग उठाने की आवश्यकता पड़े तो बिना क्रोध और वैमनस्य के वैसा करें ।

आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि चाहे आपके विरोधी आपको हानि पहुंचाते हुए लगते हों, परन्तु अन्ततोगत्वा उनके विध्वंसक कृत्य उन्हें ही हानि पहुंचाने वाले हैं । बदला लेने की अपनी प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति को रोकने हेतु आप करुणाशील बनने की अपनी इच्छा का तथा दूसरों को उन कर्म-फल के दु:खों से बचाने के अपने दायित्व का स्मरण करें । इस प्रकार जो युक्तियां आप अपनाते हैं, वे शान्तस्वभाव से चयन की गई होने के कारण अधिक प्रभावशाली, अधिक उपयुक्त तथा अधिक बलवती होंगी । क्रोध की अन्धशक्ति पर आधारित बदले की कार्यवाही एवं विरोध कभी अभीष्ट लक्ष्य सिद्ध नहीं करते ।

मित्र तथा शत्रु

मैं पुन: जोर देकर कहना चाहूंगा कि 'करुणा, विवेक तथा सहिष्णुता अच्छे गुण होते हैं'—किन्तु ऐसे गुण चिन्तन मात्र से आसानी से विकसित नहीं हो सकते । कठिनाइयों के उत्पन्न होने पर ही हम उनका अभ्यास कर सकते हैं । अर्थात् कठिन परिस्थिति में ही इनका विकास सम्भव है । किन्तु कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न कर कौन हमें इन गुणों के विकास का अवसर प्रदान करता है ? हमारे मित्र ? नहीं, बल्कि हमारे शत्रु । वे ही हमें बहुत कष्ट भी देते हैं । अत: यदि करुणा आदि की सच्ची शिक्षा प्राप्त करनी है तो हमें अपने शत्रुओं को अपना उत्तम गुरु मानना चाहिए ।

जिस व्यक्ति को करुणा तथा प्रेम प्रिय हैं, उसके लिए अपने चित्त में वास्तविक क्षान्ति का उत्पाद परम आवश्यक है तथा क्षान्ति के अभ्यास हेतु शत्रु की उपस्थिति अनिवार्य है । अत: हमें अपने शत्रुओं के आभारी होना चाहिए, क्योंकि क्षान्तियुक्त शान्त चित्त के विकास में वे ही सर्वाधिक सहायक हो सकते हैं । इतना ही नहीं, बल्कि निजी तथा सार्वजनिक जीवन में भी प्राय: परिस्थितियां बदलने से शत्रु भी मित्रों के रूप में बदल जाते हैं अर्थात् शत्रु मित्र बन जाते हैं ।

क्रोध तथा घृणा सदा हानिकारक होते हैं तथा जब तक हम चित्त को अभ्यस्त एवं शिक्षित नहीं करते और क्रोध व घृणा के अकुशल बल को क्षीण नहीं कर देते, तब तक वे विघ्न डालते ही रहेंगे और चित्त में शान्ति के उत्पाद

एवं विकास में बाधा डालते रहेंगे । क्रोध तथा घृणा ही हमारे असली शत्रु हैं; इन्हीं का विरोध कर हमें उन्हें पराजित करना है, न कि उन अस्थाई 'शत्रुओं' को, जो जीवन भर यदाकदा उभरते रहते हैं ।

स्वाभाविक ही है तथा उपयुक्त भी है कि हम सब मित्रों के इच्छुक हैं । मैं प्रायः विनोद में कहा करता हूं कि यदि स्वार्थपरायण होना चाहते हो तो अत्यन्त पर-हितकारी बनो; दूसरों की अच्छी देखभाल करो, उनका भला सोचो, सहायता करो, सेवा करो, अधिक मित्र बनाओ, अधिक मुस्कराओ । परिणाम ? जब आपको सहायता की आवश्यकता पड़ेगी तो सहायता देने वालों की कमी न होगी । विपरीत इसके, यदि आप दूसरों के सुख की परवाह न करेंगे तो अन्ततः हानि आपकी ही होगी । क्या लड़ाई-झगड़े, क्रोध, ईर्ष्या तथा प्रतिस्पर्धा की भावना द्वारा मैत्री उत्पन्न की जा सकती है ? बिलकुल नहीं । सच्चे तथा गूढ़ मित्र तो स्नेह-भाव से ही बनते हैं ।

आज के भौतिकतावादी समाज में धन तथा शक्ति से सम्पन्न लोगों को मित्रों की कमी नहीं; परन्तु वे आपके मित्र तो नहीं हुए; वे तो आपके धन तथा आपकी शक्ति के मित्र हुए । धन तथा प्रभाव नष्ट हो जाने पर वे लोग ढूंढने पर भी न मिलेंगे ।

संसार में जब परिस्थितियां हमारे अनुकूल होती हैं तो हम विश्वस्त रहते हैं कि हम स्वयं समर्थ हैं, अतः मित्रों की क्या आवश्यकता है; परन्तु जैसे ही हमारी स्थिति तथा स्वास्थ्य ढलने लगते हैं तो हमें आभास होने लगता है कि हमारी धारणा कितनी गलत थी । उस क्षण हमें यह भी पता चलता है कि कौन वास्तव में सहायक है तथा कौन निरर्थक है । अतः ऐसे क्षण के लिए स्वयं को तैयार करने हेतु तथा अवसर पड़ने पर सहायता करने वाले सन्मित्र बनाने हेतु हमें स्वयं परोपकार-भावना का विकास करना चाहिए ।

कभी-कभी जब मैं यह कहता हूं कि मैं अधिक से अधिक मित्र बनाना चाहता हूं तो लोग मुझ पर हंसते हैं । मुझे मुस्कराहटें अच्छी लगती हैं । इन (दोनों अभिरुचियों) के कारण मेरी उलझन बनी रहती है कि किस तरह मैं अधिक मित्र बनाऊं तथा अधिक मुस्कराहटें—हार्दिक मुस्कराहटें, एकत्रित करूं ? मुस्कानें भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं-व्यंगात्मक, कृत्रिम तथा राजनयिक । कई मुस्काने सान्त्वना-हीन होती हैं तथा वे कभी-कभी शंका और

भय को उत्पन्न करने वाली होती हैं, है न ? हां, हार्दिक मुस्कान तो मन में ताजगी भरती है तथा वह मानव की ही विशिष्टता है । यदि हम ऐसी मुस्कराहटें चाहते हैं तो स्वयं हमें उन हेतुओं का उत्पाद करना होगा, जो उन्हें जनित करते हैं ।

करुणा तथा संसार

अन्त में, इस छोटे से लेख की परिधि लांघ कर मैं अपने प्रतिपादन का विस्तार करते हुए कहना चाहूँगा कि व्यक्तिगत स्नेह हमारे समूचे मानव समाज के सर्वांगीण कल्याण हेतु प्रभावी तथा सम्पूर्ण ढंग से योगदान दे सकता है । क्योंकि हमारी सबकी प्यार की आवश्यकता समान है, इसलिए हर मिलने वाले व्यक्ति को अपना भाई अथवा अपनी बहिन समझना सम्भव हो सकता है । कोई चेहरा चाहे कितना ही नया हो अथवा वेशभूषा कितनी ही भिन्न हो, व्यवहार भी अलग हो, तो भी हमारे तथा अन्य लोगों में कोई भेद नहीं । बाहरी भिन्नताओं पर बल देना मूर्खता है, क्योंकि हम इन्सानों की मूल प्रकृति तो एक जैसी है ।

अन्ततोगत्वा, मानवता एक है तथा यह लघु ग्रह एकमात्र हमारा घर । यदि हमें इस घर को सुरक्षित रखना है तो हम में से हर एक को एक स्पष्ट सार्वभौम कल्याणभावना या उत्तरदायित्व की भावना का एहसास होना चाहिए । यही एक भावना है, जो उन स्वार्थमयी आकांक्षाओं का निवारण कर सकती है, जिनसे प्रेरित हो लोग दूसरों को धोखा देते हैं अथवा दूसरों का दुरुपयोग करते हैं । यदि आप का हृदय स्वच्छ, सरल, निष्कपट एवं निष्ठायुक्त है तो आप स्वाभाविक तौर से अपने को समर्थ तथा विश्वस्त महसूस करेंगे तथा आपको दूसरों से भय खाने की आवश्यकता न होगी ।

मेरा विश्वास है कि पारिवारिक, जनपदीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थात् समाज के प्रत्येक स्तर पर एक सुखी एवं सफल विश्व के निर्माण की कुंजी है, 'करुणा का विकास'— इसके लिए न हमें धार्मिक होने की जरूरत है तथा न ही किसी मतवाद की । हम में से प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक है तो यह कि हम अपने मानवीय गुणों का विकास करें ।

जो भी व्यक्ति मुझसे मिलता है, मैं उसे एक पुराने मित्र की भाँति मानता हूं; इससे मुझे सच्चे सुख की अनुभूति होती है । यही है करुणा की वास्तविक चर्या ।

तिब्बत के दलाई लामा शान्ति के उपासक के रूप में एक विश्ववन्दित व्यक्ति हैं । तिब्बत के धार्मिक तथा राजनीतिक नेता के रूप में उन्होंने निरन्तर अहिंसा की नीति का प्रतिपादन किया है, यद्यपि उन्हें घोर आक्रमण का सामना करना पड़ा है । उनके इसी दृष्टिकोण के फल-स्वरूप उन्हें १९८९ का लब्ध-प्रतिष्ठ नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया । विश्व-व्यापी यात्राओं तथा प्रवचनों के दौरान सरलता, गम्भीरता तथा उदारहृदयता से सार्व-भौम उत्तरदायित्व और करुणा के अपने सन्देश के कारण धार्मिक, राष्ट्रीय तथा राजनीतिक परिसीमाओं से ऊपर उठकर वे जन-जन के हृदय में उतरे हैं । इस छोटी सी पुस्तिका में वे स्पष्टता के साथ तथा तर्कसंगत ढंग से इस बात की व्याख्या करते हैं कि कैसे करुणा मानवीय प्रकृति के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है तथा हम जब चाहें अपने इस जन्मसिद्ध अधिकार का अधिग्रहण कर उसे विकसित कर सकते हैं ।

Library IIAS, Shimla
H 294.763 D 15 K
00095055